RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-03
Issue-12
December-2018

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[UGC Listed Journal]

भारत में पर्यावरणवाद- वैचारिक आधार व चुनौतियाँ

मनीष कुमार

सहायक प्रोफेसर, राजनीतिक विज्ञान विभाग, स्वामी श्रद्धानंद महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

ARTICLE DETAILS

Article History
Published Online: 10 December 2018

Keywords
पर्यावरणवाद, प्रकृति, पारिस्थिकीय, बर्जुवा पर्यावरणवाद

ABSTRACT

पर्यावरण एक ऐसा विषय है जिसपर समाजविज्ञान की दुनिया में उपलब्ध साहित्य की अपनी विविधता व रंग है। यह लेख भारतीय पर्यावरणवादी विमर्श में मौजूद अकादमिक लेखों व उसके दावों को गहराई से पड़ताल करता है। संग ही पर्यावरणवादी आंदोलन को चुनौतियों व समस्याओं को भी उकेड़ा गया है।

भूमिका

पर्यावरणवाद के पूरे विमर्श के पीछे मनुष्य और पर्यावरण के आपसी संबंध की गुत्थी को समझना जरुरी है। दिलचस्प रुप से इनके संबंध हमेशा एक समान नहीं रहे हैं। एकेडमिक विमर्श ने मनुष्य और प्रकृति के बीच के संबंध को दो प्रकार की ज्ञानमीमांसा के आपसी टकराव के संदर्भ में से भी समझ सकते हैं। और यही टकराव पर्यावरणवाद को एक अलग अकादमिक विर्मश के रुप में अस्तित्व में लाने की आधारशिला रखता है। कार्टेशियन ज्ञानमीमांसा बनाम स्थानीय ज्ञान मीमांसा। कार्टेशियन ज्ञानमीमांसा सदैव यह मानता रहा है कि मनुष्य और प्रकृति के संबंध में मनुष्य सर्वोपरी है। क्योंकि मनुष्य विज्ञान व तकनीक के ज्ञान से प्रालब्ध है, एवं वह ऐसी क्षमता हासिल कर चुका है कि वह प्रकृति उसके अधिन है। निश्चित तौर पर इसी ज्ञान व वैचारिक स्थिति से प्रशिक्षण प्राप्त करके राज्य स्वयं को विकासवादी राज्य मानने लगा। क्योंकि उसके लिए विकास का सही मायने प्रकृति पर नियंत्रण था। जबकि दूसरी ज्ञानमीमांसा यह मानती है कि मनुष्य व प्रकृति में कोई तुलना नहीं है, वरन् प्रकृति सदैव सर्वोपरि थी, और सर्वोपरी रहेगी। मनुष्य कभी प्रकृति को बांध नहीं सकता, उसपर अंकुश नहीं लगा सकता है। और यदि अंकुश लगाता है वह विनाश की लीला रचेगी। दिलचस्प है कि दोनों ज्ञानमीमांसा के मध्य यही वैचारिक तनाव व विरोधाभास है। स्वतंत्रता के पश्चात् नेहरुवादी परिकल्पना के अनुसार, स्वतंत्र भारत को आधुनिकीकरण व प्रगति के पथ पर चलाने के लिए, विकास के विमर्श को छूने के लिए हमें प्रकृति को बांधना पड़ेगा, क्योंकि विज्ञान ने प्रकृति पर कब्जा स्थापित कर लिया है। यही कारण है कि स्वतंत्रता के उपरांत बड़े-बड़े बांध, बड़ी-बड़ी विकासवादी परियोजना, उद्योग लगाने की कवायद की गई। और इसकी रफ्तार इतनी अंधाधुंध तरीके से चली कि प्रकृति पर पड़ने वाले दुष्परिणाम की तरफ ध्यान में नहीं दिया गया। यही कारण है कि लगभग दो दशक के बाद कार्टेशियन ज्ञानमीमांसा को चुनौती स्थानीय लोगों व सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा दिया गया। इसी तर्ज पर पर्यावरण के मुद्दे पर आधारित विभिन्न सामाजिक आंदोलन शुरु हुए। और इसकी रफ्तार व सक्रियता इतनी प्रबल थी कि पर्यावरणवाद एक अकादमिक विमर्श के रुप में आज हमारे सामने है।

बहरहाल यह लेख पर्यावरणवाद से जुड़े अकादमिक लेखों द्वारा प्रस्तुत तर्कों, मान्यताओं व दावों को पुख्ता तरीके से प्रस्तुत करता है। उनकी आपसी विरोधाभास को प्रस्तुत करता है। पर्यावरणीय आंदोलन की चुनौतियों को भी सामने रखता है। ऐसे में यह लेख भारत में पर्यावरणवाद के संदर्भ में एक बुनियादी समझ विकसित करना है।

सैद्धांतिक बहस (Theoretical debate)

रामचंद्र गुहा द्वारा भारतीय पर्यावरणवाद की तीन लहरें

प्रसिद्ध इतिहासकार व पर्यावरणविद् रामचंद्र गुहा ने अपने महत्वपूर्ण अकादमिक भाषण में तीन प्रकार के लहर की तरह इशारा किया है।

भारतीय पर्यावरणवाद की पहली लहर

भारतीय पर्यावरणवाद की पहली लहर की शुरुआत तीस और चालीस के दशक के दौरान शुरु हुई। यह मूल रुप से एक बौद्धिक पहल के रुप में था। विचारों, लेखकों, वैज्ञानिकों और कार्यकर्ताओं के नेतृत्व में मुख्य मांग यह थी कि औद्योगिकरण के पश्चिमी मॉडल का आंख मूंदकर पालन करने के स्थान पर भारत के अपने पुराने संसाधन आधारित व परंपरागत आकांक्षा पर आधारित आर्थिक विकास अधिक सही तरीका होगा। गौरतलब है कि पर्यावरणवाद के इस पहली लहर के अंतर्गत निम्न पर्यावरणविद् शामिल थे- 1. जे.सी कुमारप्पा- जो गाँव की उन्नति के अगुआ थे। 2. सलीम मुइउद्दीन अब्दुल अली- भारतीय ओरिथोनॉलिस्ट (जो व्यक्ति पक्षियों का अध्ययन करता हो) एवं प्रकृतिवादी 3. एम.कृष्णा- भारतीय वन्य जीवन फोटोग्राफर 4. मेडेलीन स्लेड (मीरा बेन)- शुरुआती दिनों में बड़े बांधों की विरोधी एवं उसके साथ ही साथ मिश्रित कृषि को मोनोकल्चर में बदलने का विरोध किया 5. पैट्रिक गिड्स- उन्होंने भारत में नगरीय टाउन प्लानिंग की धारणीयता के सवाल पर कार्य किया।

दूसरी लहर (second wave)

सत्तर के दशक के शुरुआत में संसाधन गहन पूँजी गहन विकास के काऱण हुए पर्यावऱणीय क्षति होती जा रही थी और सत्तर के दशक की शुरुआत में भारत में पर्यावरणवाद एक नये अवतार में उभरा, इस बार केवल

RRIJM 2015, All Rights Reserved

बौद्धिक आलोचना के रुप में यह नहीं था, जैसा कि पहले लहर में था। बल्कि इस दौर में एक लोकप्रिय सामाजिक आंदोलन की नींव पड़ चुकी थी। इसे सत्तर और अस्सी के दशक के दौरान भारतीय पर्यावरणवाद की दूसरी लहर की शुरुआत के रुप में दिखा गया। भारतीय पर्यावऱणवाद की दूसरी लहर के अंतर्गत हिमालयी किसानों द्वारा किया गया चिपको आंदोलन, दक्षिण भारत में हुए अप्पिको आंदोलन, साइलेंट वैली में हुआ आंदोलन आदि प्रमुख रुप से शामिल किया जा सकता है।

चिपको आंदोलन कई कारणों से महत्वपूर्ण था-

क) यह प्रमाणिक रुप से स्वदेशी था क्योंकि भारत का पहला पर्यावरण के मुद्दे पर लड़ा गया आंदोलन था।

ख) इसने विरोध का गाँधीवादी अहिंसक तरीका को अपनाया।

ग) इसमें स्थायित्व व आजीविका के लिए आंदोलन किया गया।

घ) आंदोलन महज विरोध पर आधारित नहीं था बल्कि इसके भीतर पुर्ननिर्माण की भी सुगबुगाहट थी। चिपको आंदोलन में किसानों जैसा कि गाँधीवादी उपायों से सीखते हुए ऐसा महसूस किया कि केवल विरोध ही सबकुछ नहीं है और हम सभी को पुनर्निमाण और बहाल करने की कोशिश करनी चाहिए। इसलिए उन्होंने बंजर और उजाड़ ढ़ाल को स्वदेशी प्रजातियों के साथ बड़े पैमाने पर फलदार औऱ चारा युक्त प्रजातियों को फिर से वनस्पति दिया।

ङ) इस आंदोलन को प्रतिनिधिमूलक के रुप में देखा गया। इस आंदोलन क लोकप्रियता इतनी अधिक थी कि सत्तर औऱ अस्सी के दशक का सभी लोकप्रिय आंदोलन कहीं ना कहीं इससे प्रभावित रहे।

च) इस आंदोलन की प्रकृति सहभागितामूलक थी जिसमें आम लोकबाग की संपूर्ण भागीदारी को केन्द्र में रखा गया।

छ) इस आंदोलन में जबरदस्त रुप से महिलाओं ने भी हिस्सा लिया। उत्तर-औपनिवेशिक भारत में इस प्रकार की महिला सक्रिया पहली बार दिख रहा था।

गौरतलब है कि सामाजिक आंदोलन का सरकारी नीतियों पर गहरा प्रभाव पड़ा। इसे निम्न तरीके से देखा जा सकता है। पहला, 1980 में पहली बार पर्यावरण विभाग की स्थापना की गई। दूसरा, जल और वायु प्रदूषण पर रोक लगाने और जैविक विविधता को बढ़ाने संबंधी कानून 1980 के दशक में आया था। तीसरा, सामाजिक आंदोलन ने पर्यावरण अनुसंधान करने के लिए भी प्रोत्साहित किया। भारत में कोई पर्यावरण समाजशास्त्र या पर्यावरण इतिहास नहीं होता अगर यह चिपको आंदोलन नहीं होता।

सामाजिक आंदोलनों की आलोचना भी भारत में होने लगी। 1970 और 80 के दशक में जबकि शीतयुद्ध चल रहा था तब भारतीय पर्यावरणवादियों को सी.आई.ए का एजेंट कहा गया जो अमेरिकी इशारे पर भारत में विकासवादी परियोजनाओं का विरोध करती है और भारत को पिछड़ा रखना चाहती है।

तीसरी लहर (Third wave of Indian environmentalism)

रामचंद्र गुहा के अनुसार, भारतीय पर्यावरणवाद की तीसरी लहर धीरे-धीरे जन्म ले रही है। गुहा के अनुसार तीसरी लहर का रुप या आकार बताना अप्रत्याशित है लेकिन यह पहले लहर की बैद्धिक प्रतिंबिंध और दूसरे लहर की गंभीर सामाजिक सक्रियता दोनों का जोड़ है। तीसरे लहर की सक्रियता के कुछ संकेत, प्रेस में आ रही रिपोर्ट और पर्यावरण के प्रति उभरती चेतना है। पर्यावरणवाद की तीसरी लहर के संकेत में खनन और वायु प्रदूषण के खिलाफ विरोध प्रदर्शनों की सीमा भी शामिल है। समकालीन समय में पर्यावरण जैसे मुद्दे पर मीडिया, बाजार और सिविल सोसाइटी की सक्रियता को इसी के अंतर्गत देखा जा सकता है।

भारतीय पर्यावरणवादी आंदोलन के तीन रुप (Three strands in the environmental movement in India)

गौरतलब है कि भारतीय पर्यावरणवादी आंदोलन के तीन विभिन्न रुपों की चर्चा रामचंद्र गुहा ने अपनी किताब एनवायरमेंटलिज्म- ए ग्लोबल हिस्ट्री (1999) में किया है। इस किताब में गुहा ने तीन विभिन्न रुप में क्रमश: योद्धा गाँधीवादी, एप्रोप्रियेट टेकनॉलॉजी, और इकोलॉजिकल मार्क्सवादी।

योद्धा गाँधीवादी के अंतर्गत एक वैकल्पिक, गैर आधुनिक दर्शन को बढ़ावा देता है, जिसकी जड़ भारतीय परंपरा में निहित है। इस प्रकार के गाँधीवादी दर्शन को सक्रियता से पर्यावऱणवादी आंदोलन में निहित करने का भाव है।

एप्रोप्रियेट टेकनॉलॉजी यानि मध्यवर्ती तकनीक के अंतर्गत विकास के स्थापित मॉडल अथवा प्रतिमान के स्थान पर मध्यवर्ती विकल्पों को खोजने का न्यौता देता है। इस प्रकार यह माइकल शुमाचर के स्मॉल इज व्यूटीफूट के तर्ज पर बड़े बड़े परियोजनाओं, उद्योगों व विकासवादी संयंत्रों के स्थान पर छोटे व मझौली परियोजनाओं, उद्योंगों, बांधों को स्थापित करने की वकालत करता है।

पारिस्थिकीय मार्क्सवादी के अंतर्गत वैसे समूहों को लिया गया है शामिल किया गया जो पर्यावरणवाद के आंदोलन को परंपरागत राजनीतिक दर्शन मसलन मार्क्सवाद के जरिये आगे बढ़ाते हैं। इस श्रेणी के अंतर्गत प्रमुख रुप से लोक विज्ञान आंदोलन (पीएसएम) की पहचान की जा सकती है। गुहा के अनुसार, उपरोक्त तीनों ही विचारधारा हालांकि एक दूसरे से अलग है परंतु भारतीय पर्यावरणवादी आंदोलन के संदर्भ में एक दूसरे को लगातार प्रभावित करती रही है।

अमिता वाभिष्कर- बुर्जुआ पर्यावरणविद (Bourgeois environmentalism)

अमिता वाभिष्कर द्वारा प्रस्तुत यह संकल्पना की अकादमिक मान्यता स्थापित है। इस संकल्पना के माध्यम से वाभिष्कर ने स्थापित पर्यावऱणवाद की अवधारणा को विस्तृत किया गया और शहरी हिस्सों में पर्यावरणवाद से मुद्दे को रेखांकित किया है। गौरतलब है कि बर्जुवा का अर्थ पूँजीवादी उच्च वर्ग से है। स्पष्ट है कि पारंपरिक पर्यावरणवादी को गरीबों का पर्यावरणवाद कहा गया क्योंकि इसमें चिपको और नर्मदा बचाओं आंदोलन लोकप्रिय उदाहरण है (गुहा व मार्टनिज एलियर 1998)। इस पर्यावणवाद के अंतर्गत शहरी अभिजात्य व कुलीन सदस्यों की जिम्मेदारी है कि वह दुनिया का मार्ग प्रशस्त करे। उनके लिए प्रकृति का आशय गरीबों के पर्यावरणविदों से भिन्न है। प्रकृति जंगल है जो प्रकृति अपने कच्चे रुप है। लेकिन दुख की बात यह है कि बुर्जुवा प्रकृति का मतलब फूलों की क्यारियाँ, सजावटी पौधे और हरे-भरे लॉन हैं। बुर्जुवा पर्यावरणवाद अपने निवास स्थान और अपने आस-पास या दूर के परिवेश के संबंध में अपने

बारे में अपनी चिंताओं को व्यक्त करने और संबोधित करने का एक तरीका है। वे विशिष्ट पाखंडी हैं जो प्रकृति की दो प्रकार की प्रजातियों में विश्वास करते हैं, अच्छी और बुरी। उनके लिए सजावटी पौधे और फूलों की क्यारियाँ जंगल से श्रेष्ठ हैं और आवारा गाय और आवारा जानवर कुत्तों और बिल्लियों जैसे पालतू जानवरों से कम हैं जो अच्छी तरह से पाले जाते हैं। चिपको आंदोलन के विपरीत, वे प्रकृति के लिए अपनी समस्याओं और चिंताओं को हल करने के लिए न्यायिक लड़ाई और न्यायिक समितियों का रास्ता अपनाने में विश्वास करते हैं। वे शक्ति और धन का उपयोग करते हैं जो समाज के प्रति कम चिंता से भरा है लेकिन प्रकृति में सुधार की छवि में परिवेश के झूठे सौंदर्यीकरण की ओर अधिक है। ये अभिजात वर्ग जो पर्यावरणवाद की ओर प्रवृत्त होते हैं, केवल उन्हीं लोगों के उत्तराधिकारी हैं जिन्होंने औपनिवेशिक काल में अपने झूठे अहंकार और लालच को संतुष्ट करने के लिए वन्य जीवन को नष्ट कर दिया था।

इसे दो उदाहरण से समझा जा सकता है। उदाहरण- 1. दिल्ली मास्टर प्लान के वर्गीकरण में कहा गया कि हरे लॉन में जंगल शामिल नहीं थे, बल्कि पार्क, फूलों की क्यारियाँ थीं। उनके लिए 'बेहतर' प्रकृति जंगल नहीं बगीचा है। उदाहरण-2 कॉमनवेल गेम्स 2010 के दौरान दिल्ली शहर का सौदर्यीकरण भी पाखंड का एक आदर्श उदाहरण दिखाई पड़ता है। क्योंकि इसमें किये गये प्रयास केवल दर्शकों की आंखों को शांत करने के लिए था, इसका उद्देश्य शहर में प्राकृतिक असंतुलन सुधारना नहीं था। इसी बुर्जुवा पर्यावरणवाद को मौजूदा समय में महानगर में प्रयोग होने वाले इलेक्ट्रिक कार को शुरु करने के राज्य के प्रयासों के साथ भी जोड़कर देखा जा सकता है। राज्य शहर के वायु प्रदूषण, और सभी को लाभ पहुँचाने के नाम पर कामगार वर्ग, रिक्शा चालक, उसके परिवार बच्चे और साथ-साथ असमानता के अलग-अलग रुपों को भी गहरा कर रहा है।

सुमी कृष्णा- रिडायरेक्टिंग एनवायरमेंटलिज्म की संकल्पना

पर्यावरणवादी सुमी कृष्णा ने अपने किताब एनवायरमेंटल पॉलिटिक्स (1996), मौजूदा विकास का प्रारुप ने लोकबाग में असंतोष ने पैदा किया है ऐस में पर्यावरणवादी राजनीति की फिर से समीक्षा करने की सुगबुगाहट पैदा किया गया है। कृष्णा गाँवों का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि किस तरह से विकासवादी प्रक्रिया के कारण गरीब लोकबाग का हाशियाकरण और बढ़ा है और वर्तमान पर्यावरणवाद लोगों को अपने विकास संबंधी चयन का स्पेस प्रदान करने में विफल रहा है। कृष्णा इस निष्कर्ष पर आगे बढ़ते हैं कि वर्तमान पर्यावरणवाद मानव विकास के लिए एक वैकल्पिक रणनीति प्रदान करने में विफल रहा है ऐसे में पर्यावरणवाद के पुर्ननिर्देशन (redirecting environmentalism) अनिवार्य रुप से जरुरी है। ऐसे में पर्यावरणवाद को अपने विकासवादी चिंताओं का विस्तार करते हुए शिक्षा और रोजगार जैसे गंभीर मुद्दे को भी समाहित करना पड़ेगा।

अशोक स्वान के अनुसार, भारत में पर्यावरण के मुददे पर आंदोलन की घटनाओं में अत्यधिक बढ़ोतरी हुई है। पर्यावरणवीय आंदोलन ने पूरे हिंदुस्तान के गरीब और हाशिये पर खड़े लोगों को उनके हितों व आजीविका की लड़ाई पर एक साथ खड़ा किया है। पर्यावरणीय प्रतिरोध ने हमारी विकासवादी प्रक्रियाओं पर गंभीर चुनौती प्रस्तुत किया है। यह आंदोलन समूहों, क्रियाकलापों व विचारों के एक व्यापक तस्वीर रखता है। आंदोलन में विचारधारात्मक बहुलवाद (ideological plurality) पर विशेष फोकस देते हुए स्वान कहते हैं इस विचारधारात्मक बहुलवाद ने पर्यावरणीय वाद-विवाद के विषय पर विरोध आंदोलन को और तीव्र बनाया। इस पर्यावरणीय प्रतिरोध के कारण भारतीय लोकतंत्र के संलयन को और प्रोत्साहन मिलता है क्योंकि इस प्रकार के प्रतिरोध से बहुत व्यापक जनसंख्या की सहभागिता है। इस प्रकार गुहा की भांति ही स्वॉन ने भी भारतीय पर्यावरणवाद के अंदर वैचारिक बहुलता को अत्यधिक बढ़ावा दिया है। (स्वॉन)

सुजाता पटेल ने पारिस्थिकी व विकास के मुद्दों को रेखांकित किया। पटेल के अनुसार, इस प्रकार का विमर्श अभी तक समाजशास्त्र के विमर्श में बहुत गंभीरता से स्थान नहीं दिया गया। ऐसा शायद इसलिए भी है क्योंकि पारिस्थिकीय और विकास की परंपरागत व उभरती परिभाषा के बीच संकट उभर रहा है। यही कारण है कि वे अंर्तसंबंध की आवश्यकता एवं उससे उभरने वाले समझ और समाज के अनुभवों को भी अध्ययन में शामिल किये जाने पर बल दिया गया है।

गेल ओम्वेट जैसे प्रबुद्ध विद्वान ने भारतीय पर्यावरणीय आंदोलन की सबसे चर्चित नर्मदा बचाओं आंदोलन में निहित नेतृत्व व प्रतिनिधित्व के मुद्दे को उठाया है। ओम्वेट ने महत्वपूर्ण रुप से नर्मदा आंदोलन की सर्वभौमिकता को चुनौती देते हुए कहा कि एनबीए दरअसल इको-रोमांटिक विश्व की आवाज थी, जिसमें जनजातीय, दलित और घाटी की पिछड़ी आबादी की सहभागिता नहीं थी। ऐसा कहकर ओम्वेट ने पर्यावरणीय आंदोलन से जुड़े आरम्भिक समझ व ज्ञानमीमांसा को चुनौती दिया। परंतु इसकी प्रकृति, एवं उसमें सहभागिता के चरित्र के मुद्दे पर गेल ओम्वेट जैसे विद्वानों द्वारा प्रस्तुत मान्यता ने पर्यावरणीय आंदोलन के गैर समावेशी चरित्र को उकेड़ने का कार्य किया है।

भारत में पर्यावरणवादी आंदोलन अथवा पर्यावरणवाद् के समक्ष प्रमुख चुनौतियाँ

भारत में पर्यावरणवादी आंदोलन की चुनौतियों को प्रमुख रुप से गॉडगिल व गुहा (1993 व 1995), सुनीता नारायण (2013), सुमी कृष्णा ने अपने अकादमिक लेखों में व्यक्त किया है। इसकी चुनौतियों को निम्न बिंदुओं के अंतर्गत देखा जा सकता है-

1. गाडगिल व गुहा ने प्राकृतिक संसाधनों के असमान पहुंच व बंटवारे के विषय को देखा है। (गॉडगिल व गुहा 1993 व 1995)। गौरतलब है कि विद्त द्वज मानते थे कि संसाधनों का उपयोग देश की लाखों आबादी खाद्य सामग्री, जलावन की लकड़ी, चारा, दवा, आदि के लिए करती है।
2. गुहा और एलीयर ने पूरी विचारविमर्श को पाश्चात्य वैचारिक प्रभाव से ग्रसित पाया। जहाँ संसाधन पर एकाधिकार और यह प्रमुख रुप से संसाधनों के दोहर की ओर संकेत करता है।
3. गॉडगिल व गुहा (1995) ने अपने शोध कार्य में सर्वहारी (ओमनिवोरस) और पारिस्थितकीय तंत्र से जुड़े लोकबाग के बीच द्वंद को रेखांकित किया है। सर्वहारी के अंतर्गत जहाँ औद्योगिक बुर्जुवा, ग्रामीण अमीर तबका, शहरी मध्यमवर्गीय वर्ग आते हैं। वहीं पारिस्थितकीय तंत्र से जुड़े लोगों में मछुआरे, किसान, खेतीहर मजदूर, वनवासी प्रमुख है। इस अंतर्द्वंद में कमजोर तबका विकास की राजनीति के भेंट चढ़ जाता है और भारी तादाद में जनसंख्या पारिस्थितिकीय शरणार्थी (ecological refugees) में तब्दील हो जाते हैं। इसके साथ ही साथ उन्होंने यह भी प्रकाशित किया है कि संसाधनों के बंटवारे

में शहरी-ग्रामीण जनसंख्या के बीच संसाधनों, पानी, मछली, डेयरी उत्पाद, खेतीकिसानी के लिए पानी के मुद्दे में भी हस्तांतरण होता है। इस प्रकार गाँव की कीमत पर शहरों का विकास होता है। और ऐसा सब कुछ पर्यावऱणीय शोषण व पारिस्थिकीय अपक्षय की शर्त पर होता है।

4. कुछ आलोचक भारत में इससे संबंधित निहित दो चुनौतियों को रेखांकित किया है। पहला, वायु और जल प्रदूषण दूसरा, प्राकृतिक संसाधनों के धारणीय पहुँच का विचार। गौरतलब है कि पहली समस्या जहाँ विशेष रुप से बढ़ती शहरीकरण से संबद्ध समस्या है वहीं दूसरा स्थानीय समाज की हकमारी से उत्पन्न समस्या है।
5. भारत में लोकबाग की जिंदगी का कोई खास मोल नहीं है। पर्यावरणीय समस्या से प्रभावित आबादी के लिए राज्य भी बिल्कुल मौन दिखाई पड़ती है। भोपाल गैस त्रासदी में प्रभावित आबादी से शारीरिक रुप से अपंग हुई अथवा नर्मदा बचाओ आंदोलन से प्रभावित जनसंख्या के लिए उचित मुआवजा प्रदान करने में विफलता भी भारतीय पर्यावरणीय आंदोलन की विफलता है।
6. स्थानीय सरकार के पास भी कमजोर निर्णय निर्माण शक्ति है जिसे पर्यावरणीय आंदोलन के संदर्भ में कई बार देखा गया है। प्लाचीमाडा पंचायत द्वारा प्लांट के विरोध में कई सारे प्रस्ताव पारित करने के बावजूद केरल उच्च न्यायल ने उसे पलट दिया एवं प्लांट को स्वीकृति प्रदान दिया। इसी प्रकार की कहानी कई अन्य स्थानों मसलन उडुपी, पश्चिमी घाट इत्यादि में भी दोहरायी गई। इस तरह पर्यावरणीय आंदोलन के अंतर्गत स्थानीय लोकबाग व संस्थाएँ मजबूत होने के स्थान पर और कमजोर हुई है।
7. पर्यावरणीय आंदोलन इसलिए भी विफल रहा है कि क्योंकि पर्यावऱणीय क्षति और तनावों को मापने के लिए किसी भी प्रकार का कोई तकनीकी सूचना का साफ अभाव देखा जा सकता है।
8. पर्यावरणीय आंदोलन की विफलता का एक प्रमुख कारण यह भी है कि भारत में अलग-अलग हिस्सों में होने वाले आंदोलन से जुड़े संस्थाओं व लोगों के बीच आपसी समन्वय का साफ तौर पर अभाव है। वहीं दूसरी तरह पर्यावरणीय मुद्दों पर काम करने वाले सामाजिक आंदोलनकारियों व अन्य महत्वपूर्ण मुद्दों पर काम करने वाले लोगों के बीच संवाद का साफ तौर पर अभाव देखा जा सकता है। ऐसे में आपसी तालमेल व संवाद के अभाव में यह आंदोलन विशिष्ट रुप से सामने दिखाई नहीं देता है।
9. पर्यावरणीय आंदोलन की एक प्रमुख विफलता यह भी है कि पर्यावरण को बचाने संरक्षण के नाम पर जो पर्यावरणीय कानून बनाये जाते हैं, वह केवल राज्य की इच्छा व प्रभाव के अधीन होता है। पर्यावरणीय कानून को बनाने की प्रक्रिया में लोगों की भागीदारी नहीं होती है। यह महत्वपूर्ण बात है कि जिस आम लोकबाग के पर्यावरणीय समस्याओं के लिए कानून बनते हैं उससे ही उसे बाहर रखा जाता है। और इस रुप में पर्यावरणीय कानून भी समावेशी प्रतीत नहीं होता बल्कि यह केवल राज्यवादी प्रकिया बनकर रह जाता है।
10. सुमी कृष्णा जैसा पर्यावरणविद् ऐसा मानती हैं कि वर्तमान में जो पर्यावरणीय आंदोलन है उसके पास मानवीय विकास संबंधी कोई वैकल्पिक रणनीति हीं है। बिना विकल्प सुझाये इसमें कुछ भी विशिष्टता नहीं रहेगी। साथ ही साथ सुमी कृषणा ने यह भी कहा कि भारत में पर्यावऱणीय विमर्श अभी भी बहुत शुरुआती चरण में है तथा उलझन में पड़ा हुआ है।
11. पर्यावरणवादी समाजशास्त्री अमिता वाभिष्कर (2011) ने बुर्जुवा पर्यावरणवाद शब्दावली को इज़ाद किया इसके अंतर्गत वह भारतीय पर्यावरणवाद में अभिजात्य व मध्यम वर्गीय प्रवृतियों, विचारधाराओं, व खर्चीली जरुरतों को दिखाता है, यह पर्यावरण से जुड़ी कानूनों पर्यावरणीय को प्रभावित करते हैं। वहीं उनका लोगों की आजीविका, स्वास्थ्य, जीवन, रहन-सहन जैसे ग्रामीणों, शहरी अमीरों व कामगार वर्गों की जरुरतों से कुछ लेना देना नहीं है।

गौरतलब है कि भारतीय पर्यावरणवाद की प्रवृतियों को सकारात्मक रुप से अनील अग्रवाल द्वारा प्रस्तुत चार उम्मीद की किरण (four ray of hope) के माध्यम से प्रस्तुत किया जा सकता है। पहला, भारत के गैर सरकारी सगंठन द्वारा प्रायोजित आंदोलन है जिसने पर्यावरणवादी विमर्श को मुख्य धारा के विमर्श में शामिल किया। इस दिशा में नवदान्य फाउंडेशन, कल्पवृक्ष, बाढ़ मुक्ति अभियान इत्यादि प्रमुख है। दूसरा, पर्यावरणीय मुद्दों पर अचानक न्यायपालिका की सक्रियता को भी सकारात्मक रुप से लिया सकता है। तीसरा, स्थानीय लोगों द्वारा की गई कोशश मसलन सुखोमाजरी, राधेगाँव सिद्धि इत्यादि भी पर्यावऱणीय आंदोलन के भविष्य की दिशा में एक उम्मीद की महत्वपूर्ण किरण है। चौथा, मीडिया द्वारा पर्यावरणीय विषयों को महत्व देना है।

संदर्भ सूची

1. आर.सी गुहा (2016), *एनवायरमेंटलिज्म: ए ग्लोबल हिस्ट्री*, पेगुइन रैंडम इंडिया, दिल्ली.
2. आर.सी गुहा (2013), द पॉस्ट एंड प्रजेंट ऑफ इण्डियन एनवायरमेंटलिज्म, द हिन्दू, 27 मार्च.
3. ओम्वेट गेल (1984), इकोलॉजी एंड सोशल मूवमेंट्स, *इपीडब्लू*, वौल्यूम. 19, एशू 44, 3 नवंबर.
4. रंगराजन, महेश (2006), एनवायरमेंटल इश्यूज इन इण्डिया, पियर्सन इण्डिया, दिल्ली.
5. कृष्णा सुमी (1996), एनवायरमेंटल पॉलिटिक्स: पीपुल्स लाइव एंड डेवलपमेंट च्वाइसेज, न्यू दिल्ली: सेज पब्लिकेशन.
6. गॉडगिल व गुहा (2012), दिस फिजर लेंड: एन इकोलॉजिकल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, ओयूपी.
7. गॉडगिल व गुहा (2018), ये दरकती ज़मीन: भारत का पारिस्थिकिय इतिहास, ओयूपी.

RRIJM 2015, All Rights Reserved

8. पटेल सुजाता (1997). इकोलॉजी एंड डेवलपमेंट, *इपीडब्लू*, वॉल्यूम 32, अंक- 38, 20 सितंबर.
9. स्वॉन अशोक (1996), डिस्प्लेसिंग द कॉन्फिक्ट: एनवायरमेंटल डिस्ट्रक्शन इन बंग्लादेश एंड एथनिक कॉन्फिक्ट इन इण्डिया, जर्नल ऑफ पीस रिसर्च, सेज पब्लिकेशन.
10. गेल ओम्वेट (1984), इकॉलजी एंड सोशल मूवमेंट्स, *इपीडब्लू*, वौल्यूम. 19, इश्यू 44, 3 नवंबर.
11. वाभिष्कर (2011), 'कॉउ, कार्स एंड साइकिल रिक्शा- बुर्जुवा एनवायरमेंटलिज्म एंड द बैटर फॉर दिल्ली स्ट्रीट', संग्रहित है, वाभिष्कर व रे (2011), (संपादित), *एलिट एंड एवरी मैन*, राउट्लेज पब्लिकेशन.

RRIJM 2015, All Rights Reserved